



गढ़वाली संस्कृति : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं वर्तमान स्वरूप—एक समीक्षात्मक अध्ययन

कुसुम डोबरियाल^{1*} एवं जे०के० गोदियाल¹

¹संस्कृत विभाग हे० न० ब० गढ़वाल विश्वविद्यालय परिसर, पौड़ी गढ़वाल—246001

*Corresponding Author Email: anoopkdobriyal@rediffmail.com

Received: 12.06.2017; Revised: 09.08.2017; Accepted: 20.10.2017

©Society for Himalayan Action Research and Development

सारांश:

भारतीय संस्कृति का जो भव्य प्रासाद वेदों की सुदृढ़ आधारशिला पर निर्मित है उसकी पृष्ठभूमि में क्षेत्रीय संस्कृति की महत्ता ध्यातव्य है। यह क्षेत्रीय संस्कृति तब और भी महत्वपूर्ण हो जाती है जब यह उन हिमालयीय कन्दराओं से सम्बन्धित होती है जहां भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ वेदों की, सृष्टि के आदिम युग से मीमांसा होती रही है। प्रस्तुत शोध पत्र में गढ़वाली संस्कृति के कुछ प्रमुख तत्वों—यथा ग्राम्यजीवन, वेषभूषा, व्यवसाय, भोजन, धर्म जाति, धार्मिक मान्यतायें, रीति—रिवाज तथा व्यापार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं वर्तमान स्वरूप का समीक्षात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

कुंजी शब्द : गढ़वाली संस्कृति, ग्राम्य जीवन, वेषभूषा, भोजन, व्यवसाय, धर्म जाति, धार्मिक मान्यता, व्यापार, ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि, वर्तमान स्वरूप

प्रस्तावना

वेदों और पुराणों में हिमवन्त की समस्त गौरव गाथा स्पष्टतः मध्य हिमालय के उस भूभाग पर केन्द्रित है जो अलकनन्दा का उद्गम स्थल है और जिसका वर्तमान नाम गढ़वाल है। पंचार वंशीय महाराजा अजयपाल ने गढ़वाल के समस्त टाकुरी राजाओं व उनके राज्यों को मिलाकर व स्वयं इन बावन गढ़ियों को जीतकर एक सुविस्तीर्ण राज्य स्थापित किया। गढ़ों की प्रचुरता के कारण इस प्रदेश का नाम 'गढ़वाल' पड़ा। संस्कृति का शाब्दिक अर्थ एक सुधरी हुई स्थिति है किन्तु इसका भावार्थ व्यापक है जिसके अन्तर्गत मानव एवं उसके समाज के रहन सहन, खान पान, वेषभूषा तथा सभ्यता का परिचय प्राप्त होता है। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि गढ़वाली समाज प्रकृति से सादगी, सच्चाई, राजभक्ति एवं सभ्यता का एक आदर्श प्रस्तुत करता है।

ग्राम्य जीवन

ब्रिटिश काल में गढ़वाल की लगभग सम्पूर्ण जनता पर्वतीय गांवों में ही बसी हुई थी। कुछ गांव भावर क्षेत्र में जल स्रोतों के निकट अवश्य बसे थे किन्तु प्राचीन समय में लोग भावर क्षेत्र में बसना उपयुक्त नहीं समझते थे। सम्भवतः सुरक्षा की दृष्टि से अथवा अपनी सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करते हुए लोगों ने पर्वतीय भागों में ही बसना प्रारम्भ किया। बसने के लिए अधिकांशतः ऐसी जगह को चुना गया जहां चौड़ी घाटियां थी, खेत बनाने की सुविधा थी एवं जल स्रोत उपलब्ध थे। भवन निर्माण हेतु सुरक्षित जगहों का चयन किया गया जहां भूस्खलन अथवा चट्टानें खिसकने की संभावना न हो अथवा बाढ़ आदि की संभावना भी न हो। मकान बनाने हेतु धूप वाली जगह का चयन किया जाता था। मकानों का निर्माण विशिष्ट शैली में किया जाता था। मकानों का समूह सुरक्षा की दृष्टि से बनाया जाता था तथा गौशाला भी एक निश्चित स्थान पर बनाई जाती थी। पर्यावरण अथवा साफ सफाई का विशेष ध्यान रखा जाता था। गांव में विभिन्न जाति के लोग पारस्परिक सद्भाव से रहा करते थे किन्तु रहने की व्यवस्था जातिगत हुआ करती थी। उपजातियां अधिक होने की स्थिति में ऐसे उपजाति समूह को 'खोल' की संज्ञा दी जाती थी।

गढ़वाल के गांवों का वर्तमान में आधुनिकीकरण अवश्य हो रहा है किन्तु प्राचीन मर्यादायें एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अभी भी देखने को मिलती है। मकान अभी भी अधिकतर समूह में ही बनाये जाते हैं किन्तु अब मकानों की बनावट में आधुनिकता का पुट देखने को मिलता है। जहां पुराने मकान पत्थर एवं मिट्टी से बनाये जाते थे वहां अब ईंट और सीमेंट के निर्मित मकानों की बहुलता है। पहले मकान की छतें विशिष्ट प्रकार की पठालों से बनायी जाती थी जो अब कंकरीट, सीमेंट और लोहे द्वारा निर्मित लेंटर से बनाये जाते हैं। गांवों में सड़कें पहुंचने के कारण गांवों का शहरीकरण हो रहा है। स्कूल, कालेज, बैंक तथा चिकित्सालय गांवों की पहुंच में है जिससे वर्तमान में गांवों का जीवन सुख सुविधाओं से सम्पन्न हो गया है। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि अभी भी गांवों में आपसी भाई चारा तथा एक दूसरे के सुख दुःख में भागीदारी गढ़वाली समाज का सम्बल है।

गृहोपयोगी सामग्री

ग्राम्य जीवन के अन्तर्गत गृहोपयोगी सामग्री का वर्णन भी आवश्यक है। प्राचीन काल में घरों में बांस अथवा रिंगाल की चटाई, गेहूं के पराल से निर्मित मांदरी, टोकरी, मिट्टी व काष्ठ के बर्तन, बांस व रिंगाल से बने अनाज रखने के भांड, घास पत्तों से बनी हुई छांतली (छाता), पीठ पर रखकर सामान ले जाने के खरांद, हथकण्डी, सामान ले जाने के लिए सोल्टा, कण्डी, डल्ला, भीमल की रस्सी से बनी बसन्तोला तथा अन्य सामग्री का प्रयोग होता था। कृषि कार्य हेतु लोहे के बने औजार—कुदाल, दथुड़ी, बंसुला, कुल्हाड़ी, खुंखरी, आदि सामग्री प्रत्येक घर में उपलब्ध रहती थी। गेहूं की पिसाई के लिए जंदेरा, धान की कुटाई के लिए उरखेला, मसाले पीसने के लिए पत्थर के सिलबट्टा तथा घी बनाने के लिए पर्या का प्रयोग हर घर में होता था। वर्तमान में ये गृहोपयोगी वस्तुएं अब कहीं भी नजर नहीं आती। दूर दराज के गांवों से कहीं-कहीं इनमें से कुछ वस्तुओं का प्रयोग कमोवेश दिखाई देता है। अन्यथा सामान्यतः अब सभी वस्तुएं आधुनिक हैं तथा कई वस्तुएं ऐसी हैं जिनकी उपयोगिता समाप्त हो गयी है। बाजार व्यवस्था के अन्तर्गत सभी वस्तुएं बनी बनाई मिल जाती हैं।

वेषभूषा

प्राचीन गढ़वाली समाज में अधिकांशतः पुरुषों की वेषभूषा लंगूटी, गाती और पाग (पगड़ी) तक सीमित थी। गाती भांग या ऊन की चादर हुआ करती थी जिसे सिर पर इस प्रकार से लपेटा जाता था जिससे कोहनियों से आगे दोनो हाथ तथा घुटनों से नीचे दोनो पैर खुले रहते थे। कमर पर भांग अथवा ऊन आदि का बना हुआ तिगड़ा या कमरबन्द लपेटा जाता था। उत्तरी भागों में लोग ऊन से बनी मिरजई, पायजामा तथा कनपुड़िया टोपी आदि पहनना पसन्द करते थे¹। डॉ डबराल के अनुसार सलाण में नारियां गलनियां की घाघरी और गाटे की बनी हुई अंगड़ी पहनती थी। सलाण क्षेत्र में कपास की खेती की जाती थी तथा कपास की कताई भी की जाती थी। वस्त्र बनाने का कार्य कोहली किया करता था। ऊंचे पर्वतीय इलाकों में लावा या ऊन की चादरों का प्रयोग किया जाता था। मुकुन्दीलाल(1968)² की पेंटिंग्स यह प्रमाणित करती हैं कि राजकर्मी सूती या ऊनी चूड़ीदार पाजामा पहनते थे तथा पगड़ी धारण करते थे। रतूडी(1980)³ के अनुसार राठ और भरदार परगने के लोग भांग की खेती करते थे तथ उसी भांग की छाल से सूत कातकर कपड़ा बनाते थे तथा निजी प्रयोग में लाते थे। इन वस्त्रों को लोग भंगेला या त्यूंखा कहते हैं।

आभूषण धारण करना प्राचीन गढ़वाल में पुरुषों एवं महिलाओं का महत्वपूर्ण शौक था। महिलायें हंसुली, नथ, मुखले, बुलाक, धागले तथा मूंगा की मालायें पहनती थीं तथा पुरुषों में मुखी, तंगल तथा अंगूठी पहनने का शौक प्रमुखतया प्रचलित था। बच्चों को भी हंसुली, धगुली तथा पहुँची पहनाया जाना सम्पन्नता का प्रतीक माना जाता था।

ग्रामीण क्षेत्र में पहनावे तथा वेषभूषा को यदि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो प्राचीन सांस्कृतिक झलकियां अभी भी दूर दराज के गांवों में मूर्त रूप में देखी जा सकती है। किन्तु परिवर्तित परिवेश में गांवों में अब लोग मशीनीकृत सूती, सिल्क अथवा ऊनी कपड़े पहनते हैं। महिलाओं में साड़ियां पहनने का शौक एक आम बात है। साथ ही महिलाओं में आधुनिक आभूषण (गुलाबन्द, कुण्डल, कड़े लॉकेट, अंगूठी, हार आदि) का शौक भी प्रायः देखा जाता है।

व्यवसाय

प्राचीन समय में खेती बाड़ी ही मूलतः समाज का व्यवसाय हुआ करता था। मुख्यतः कोदा, झंगोरा, दालें, गेहूं, धान, सब्जियां (आलू, प्याज, तुरई, लौकी, परमल, भिण्डी, मूली, राई, बेंथू, औगल, पालक) आदि का उत्पादन किया जाता था।

वर्ष भर सब्जियों की कमी न हो इसके लिए मौसमी सब्जियों को सुखाकर (सुक्से बनाकर) पूरे साल भर उपयोग के लिए रखा जाता था। इसके अतिरिक्त पशुपालन भी प्रमुख व्यवसाय के रूप में अपनाया जाता था। प्रत्येक घर में गाय, भैंस, बैल, बकरियां, मुर्गियां आदि पाली जाती थी जो दैनिक आवश्यकता की आपूर्ति के अलावा परिवार की आर्थिकी का भी एक स्रोत हुआ करती थीं। भेड़ों से प्राप्त ऊन से कपड़े बनाये जाते थे। गाय एवं बकरी का दूध विक्रय किया जाता था। पशुओं का गोबर खेती के काम आता था। तत्कालीन समय में खेतों में जानवर बांधकर गोष्ठ (गोट) लगाने की परम्परा थी, जिसमें खेतों की उर्वरा शक्ति बढ़ती थी तथा कार्बनिक खाद्य सामग्री पैदा होती थी जो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी होती थी। इसके अतिरिक्त प्राचीन समय में कुछ जाति आधारित व्यवसाय भी समाज का प्रमुख अंग थे। ब्राह्मण (पण्डित) पण्डिताई कर अपने परिवार का भरणपोषण करते थे जबकि दर्जी, लोहार, बढ़ई, शिल्पकार आदि अपने अपने व्यवसाय से परिवार का पालन पोषण किया करते थे। कुल मिलाकर समाज का प्रत्येक वर्ग एक दूसरे पर निर्भर था। काम के बदले अनाज की परम्परा अधिक थी (गोदियाल एवं डोबरियाल, 1998)⁴

बदलते समय में सामाजिक प्रगति के फलस्वरूप लोगों के व्यवसाय में भी बदलाव आना स्वाभाविक है। खेती और पशुपालन अब तराई अथवा भावर क्षेत्र तक सीमित रह गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में अब यह लगभग ना के बराबर है इसका प्रमुख कारण धनोपार्जन, शिक्षा, चिकित्सा, आधुनिक भौतिक सुख सुविधाओं की तलाश में लोगों का पहाड़ों से पलायन है। यहां के युवक अधिकतर देश की सेना में भर्ती होकर देश की सेवा में अपना योगदान दे रहे हैं। गढ़वाल राइफल रेजीमेंट सेन्टर इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। शिक्षा के प्रसार के साथ ही यहां के युवक, सरकारी तथा गैर सरकारी सेवा को रोजगार के रूप में अपना रहे हैं। जहां तक ग्रामीण परिवेश का प्रश्न है आज जो भी परिवार गांवों में रह रहे हैं वे पूर्णतया धनादेश आर्थिकी अथवा धनान्तरण आर्थिकी पर निर्भर हैं। पिछले कुछ दशकों में कुछ नये व्यवसायों का भी प्रचलन गढ़वाल में देखने को मिला है। मत्स्यपालन, मशरूम उत्पादन, अंगोरा खरगोश पालन, मौन पालन, भेड़ पालन, हस्तशिल्प, पर्यटन तथा होटल आदि व्यवसाय यहां की आर्थिकी को सुदृढ़ बना सकते हैं यदि इनसे सम्बन्धित समस्याओं का निराकरण किया जाय अथवा नई वैज्ञानिक पद्धति एवं तकनीकी का प्रयोग किया जाय।

मत्स्यपालन के लिए गढ़वाल में पर्याप्त प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध हैं किन्तु सरकारी नीतियां इस व्यवसाय के प्रति जनता को आकर्षित नहीं कर पा रही हैं (डोबरियाल, 1990)⁵। मत्स्य पालन आर्थिकी के एक सुदृढ़ पर्याय के साथ साथ ग्रामीण जनता के लिए प्रोटीनयुक्त भोजन का भी महत्वपूर्ण स्रोत है। इसी प्रकार मशरूम तथा मौन पालन की विकसित तकनीकी का प्रयोग भी गढ़वाल की आर्थिकी को मजबूती प्रदान कर सकता है। इसके अतिरिक्त अंगोरा खरगोश की तीन प्रजातियां—जर्मन, रसियन तथा ब्रिटिश के पालन हेतु यहां का वातावरण काफी अनुकूल है। इसका आधुनिकीकरण करके आर्थिकी का एक नया स्रोत उत्पन्न किया जा सकता है। देवभूमि होने के कारण यहां की चार धाम यात्रा विश्व प्रसिद्ध है तथा उत्तराखण्ड सरकार के लिए भी आर्थिकी का उत्तम साधन है। वर्तमान में यहां के युवकों का पर्यटन व्यवसाय के प्रति लगाव बढ़ा है तथा युवकों को रोजगार पाने का अच्छा अवसर मिला है। सरकार यदि पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए कुछ आधुनिक नीतियां बनाये तो इस दिशा में प्रगति के अन्य मार्ग खुल सकते हैं। रीवर राफ्टिंग, स्कीइंग तथा नये पर्यटन स्थलों का विकास सार्थक प्रयास हो सकते हैं।

भोजन

भोजन सामग्री किसी भी समाज की संस्कृति का अभिन्न पहलू है। प्राचीन गढ़वाल में प्रातःकालीन भोजन को कलेवा नाम दिया जाता था, जिसमें मण्डुवे की रोटी तथा चटनी प्रमुखतया प्रयोग की जाती थी। दोपहर के भोजन में मण्डुवे की बाड़ी, झोली (कड़ी), कौणी—झंगोरा, पलेऊ, खिचड़ी, आदि की अधिकता होती थी तथा सांयकालीन भोजन में रोटी, मौसमी सब्जी, चने की दाल, उर्दी, गल्थ्यूड़ी आदि का प्रयोग किया जाता था। जंगली सब्जियों में तैडू, गींटी, मशरूम आदि का प्रयोग भी किया जाता था। फलों में हिसर, किनगोड़ तथा काफल बच्चों की पसन्द हुआ करते थे। यात्रा के समय सत्तू और गुड़ का प्रयोग प्राचीन गढ़वाल की एक पहचान थी। घर आये मेहमान का स्वागत भी गुड़ की डली और पानी परोस कर किया जाता था। मिठाई के रूप में लीची चने का प्रयोग प्रमुखतया किया जाता था।

वर्तमान परिस्थितियों में यदि गढ़वाली समाज के भोजन का आंकलन किया जाय तो पायेंगे कि ये सभी प्राचीन भोजन अब यदा कदा दर्शन मात्र के रह गये हैं। अब परिवारों में सम्पन्नता अधिक है। गेहूं की रोटी, चावल, विभिन्न प्रकार की दालें, सब्जियां सामान्यतया भोजन में सम्मिलित होते हैं।

धर्म एवं जाति

गढ़वाल में मूलतः हिन्दू, धर्म के लोग ही निवास करते थे। मुसलमानों के गांव न्यूनतम थे तथा नीति, माणा तथा नीलंग आदि सीमान्त क्षेत्र में कतिपय बौद्ध धर्म तथा आर्य समाजी लोग बसते थे। रतूड़ी (1980)³ के अनुसार गढ़वाल की एक जाति जो चुरेड़ (मनिहार) कही जाती थी वहीं मुसलमान मानी गई तथा उसी के कारण यहां पर मुसलमानों की जनसंख्या में वृद्धि हुई। रतूड़ी (वही) के अनुसार मुसलमानों का गढ़वाल में आगमन कब हुआ इसके कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है। साथ ही ईसाईयों का आगमन भी सम्भवतः 18वीं सदी में ही हुआ। ईसाईयों की संख्या में वृद्धि का कारण कतिपय हिन्दू जातियों का धर्मान्तरण रहा है जिन्हें हिन्दू धर्म के अन्तर्गत सामाजिक भेद भाव से गुजरना पड़ा। पौराणिक काल से ही हिन्दू धर्म को चार जातियों में बांटा गया वही जातियां गढ़वाल में प्राचीन काल से ही बहुलता में रही (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र)। इतिहासकार मानते हैं कि गढ़वाल में लोगों ने जिस स्थान पर बसना प्रारम्भ किया उसी से अपनी उपजाति का नाम रख दिया। रतूड़ी (1980)³ ने अपने रचना में विस्तृत रूप से इसका वर्णन किया है। संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन गढ़वाल में ब्राह्मणों को तीन श्रेणियों में रखा गया था (सरोला ब्राह्मण, गंगाड़ी ब्राह्मण तथा खस ब्राह्मण)। इसी प्रकार क्षत्रिय दो भागों में विभक्त थे (क्षत्रिय, राजपूत एवं खस राजपूत)। शूद्रों की तीस जातियों का वर्णन रतूड़ी (वही) ने अपने अध्ययन में किया है जो अधिकांशतः उनके कार्यों के आधार पर बनी है। गोदियाल एवं डोबरियाल (1998)⁴ ने अपने अध्ययन में 33 सरोला ब्राह्मण, 78 गंगाड़ी ब्राह्मणों तथा 121 क्षत्रियों की जातियों को सम्मिलित किया है।

गढ़वाल हिमालय की आदिम जात 'खस' मानी गयी है, जिसके सम्बन्ध में एवट (1880)⁶, एटकिंसन (1884)⁷ तथा गिर्यर्सन (1916)⁸ ने अपने मत व्यक्त किये हैं। सारांशतः खस समुदाय मध्य हिमालय की एक शक्तिशाली जाति है जो विशेष स्थान और जलवायु में निवास करने से अपने धार्मिक आचारों का दृढ़तापूर्वक पालन न कर सके। भजन सिंह 'सिंह' (1986)⁹ खस जाति को हिन्दू द्विजों की संस्कारच्युत सन्तति मानते हैं।

विवाह पद्धति

धर्मशास्त्र में आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन किया गया है (ब्राह्म, दैव, आर्य, प्रजापात्य, आसुर, पैशाच, गान्धर्व एवं राक्षस)। प्रायः यह देखा जाता है कि गढ़वाल वासियों के ब्राह्मण एवं क्षत्रियों में केवल ब्राह्म रीति से ही विवाह होते हैं। सवर्णा स्त्री और उससे पैदा हुई संतान ही असली संतान, दायभागी और पिण्डदाता गिनी जाती है। विवाह में वाक्यदान, संकल्प, पाणिग्रहण, सप्तपदि, होम इत्यादि वैदिक रीति से होते हैं। ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों में पुनर्विवाह की रीति नहीं है। बल्कि उसे जातिच्युत होने का कारण माना जाता है। तथापि पुनर्विवाह के छुटपुट प्रकरण दिखाई देते हैं। प्राचीन समय में गढ़वाल में अनेक प्रकार की विवाह पद्धतियाँ प्रचलित थी। यहां के वैवाहिक उत्सवों में अनिवार्यतः अग्नि पूजन, वैदिक परम्परा का स्पष्ट परिचायक है। मांगल गीतों का गाया जाना, कलश पूजन आदि परम्पराएं आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में देखने को मिलती हैं। कुछ स्थानों पर टका विवाह की परम्परा भी थी। रतूड़ी (1980)³ के अनुसार खस राजपूत एवं खस ब्राह्मणों से आसुरी रीति से विवाह सम्पन्न होते थे, जिसमें धन सम्पत्ति, कन्या शुल्क देकर विवाह होते थे, जिनमें पाणिग्रहण या सप्तपदी जैसी प्रक्रिया नहीं अपनाई जाती थी। जौनसारी समाज अपनी सप्तपदी जैसी प्रक्रिया नहीं अपनाई जाती थी। जौनसारी समाज में अपनी बहुपति प्रथा अथवा द्रोपदी विवाह के कारण चर्चित रहा है, जिसका विस्तृत विवरण डॉ० शिवानन्द नौटियाल (1990)¹⁰ ने अपने अध्ययन में किया है। भोटिया जनजाति में 'रंगबंग' नाम की व्यवस्था प्रचलित थी (नौटियाल, वही) जिसमें विवाह पूर्व लड़के लड़कियों को मिलने की इजाजत दी जाती थी।

वर्तमान समय में भी गढ़वाल में विवाह मुख्य रूप से वैदिक रीति से ही किये जाते हैं। यदा कदा आर्य विवाह, न्यायालय विवाह आदि भी देखने को मिलते हैं। दहेज की परम्परा गढ़वाली समाज में न के बराबर है। माता-पिता स्वेच्छा से अपनी कन्या को उपहार स्वरूप अपनी यथाशक्ति कुछ दान देते हैं। दूल्हे का घोड़ी पर जाना, सप्तपदी, कलश पूजन, जयमाल आज की वैवाहिक परम्परा के सूचक हैं।

धार्मिक मान्यतायें एवं सामाजिक रीति-रिवाज

गढ़वालियों के धार्मिक विश्वास मूलतः यहां की भौगोलिक परिस्थितियों पर आधारित थे। प्राचीन काल से ही यहां के लोग अत्यन्त भक्ति एवं श्रद्धा के साथ देवी, देवताओं का पूजन किया करते थे। प्रत्येक पर्वत शिखर (डाँडे) पर देवी

देवताओं के मन्दिर स्थापित थे, जिन्हें क्षेत्र रक्षक देवता की संज्ञा दी जाती है। दुर्गम व सीधी चढ़ाई वाले पर्वतों पर विभिन्न नामों से 'भैरव' की पूजा होती है। ऊँचे स्थान पर घण्टाकर्ण (घण्डियाल) यक्ष का अस्तित्व माना जाता है। ग्राम देवताओं को प्रसन्न करने के लिए रोट चढ़ाये जाते हैं। मकानों के छत की मुड़ेड़ी पर देवताओं के पाषाणलिंग की स्थापना की जाती है। अधिकांशतः गांवों में किसी ऊँचे स्थान पर अथवा वृक्ष के नीचे देवता का स्थान (थान) स्थापित किया जाता है। वहां एक पत्थर, त्रिशूल तथा दीपक की स्थापना की जाती है। गांवों में पाण्डव लीला, रामलीला, द्यौ पुजाई आदि का आयोजन प्रतिवर्ष किया जाता है। इसके अतिरिक्त धार्मिक मेला (नन्दा देवी राजजात, बैकुण्ठ चतुर्दशी, माघ मेला, पुत्रदा मेला) का आयोजन यहां के लोगो की धर्म के प्रति आस्था के अप्रतिम उदाहरण हैं। गढ़वाल में प्रमुखतः क्षेत्ररक्षक देवता भैरव, नाग, नरसिंह, शिव पार्वती, लक्ष्मी नारायण, हनुमान आदि पूजे जाते हैं। सांस्कारिक रीति-रिवाजों में गढ़वाल में प्रमुखतया नामकरण संस्कार षष्ठीपूजन, मुण्डन, विवाह सभी धार्मिक रीति से मनाये जाते हैं। अन्तिम संस्कार के रूप में मृत शरीर श्मशान घाटों में जलाये जाते हैं तथा उनकी अन्त्येष्टि रीति-रिवाज के अनुसार की जाती है। पितरों का श्राद्ध, तर्पण, पित्रकूड़े की स्थापना आदि यहां के लोगों के सांस्कारिक होने के प्रमाण देते हैं।

व्यापार

प्राचीन गढ़वाल में व्यापार के क्षेत्र में ढाकर प्रथा अत्यन्त प्रचलित थी। इसमें ग्रामीण निवासी शीतकाल के दौरान आवश्यक घरेलू सामग्री क्रय करने के लिए एक समूह में भाबर के मुख्य बाजार पर जाया करते थे। इस प्रथा को ढाकर प्रथा कहा जाता था। लोग अपनी आवश्यकतानुसार नमक, गुड़, तम्बाकू, सुपारी, साबुन, कपड़े आदि खरीद कर लाते थे तथा अपनी पैदा की गई सामग्री (हल्दी, अदरक, शहद, घी, मिर्च, जड़ी बूटी आदि) विक्रय भी करते थे। इसके अतिरिक्त ग्रामीण लोग तीर्थयात्रा मार्गों पर यात्रियों को सुविधा प्रदान करने के लिए उनके लिए रहने, खाने पीने आदि की व्यवस्था भी करते थे। ये स्थान चट्टियों के नाम से प्रसिद्ध थे। इसी तरह से यात्रा मार्गों पर कुछ बड़े विक्रय केन्द्र भी स्थापित किये जाते थे जिन्हें 'हॉट' का नाम दिया जाता था। तत्कालीन समय के प्रमुख हाट थे-देवप्रयाग, रूद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग, नन्दप्रयाग, उखीमठ, केदारनाथ, बद्रीनाथ, रामनगर, कोटद्वार एवं हरिद्वार।

वर्तमान समय में यदि गढ़वाल में व्यापार का आंकलन किया जाय तो सड़क मार्ग की सुविधा के कारण अब स्थान-स्थान पर बहुत अच्छे बाजार स्थापित हो गये हैं। यहां तक कि गांवों के समीप भी दैनिक आवश्यकता हेतु पर्याप्त मात्रा में दुकानें उपलब्ध हैं। से रोजगार को भी बढ़ावा मिला है तथा ग्रामीण जीवन भी आरामदायक हो गया है। पहले तो पंजाबी हिन्दू तथा राजस्थानी मारवाड़ियों की बहुलता थी किन्तु अब हर जाति वर्ग के लोगों ने व्यापार को अपना योजगार का साधन बना दिया है।

उपरोक्त समीक्षा से यह पुष्ट होता है कि गढ़वाली समाज प्राचीनकाल से ही एक सभ्य समाज था, जिसने जीवन शैली को एक आदर्श रूप में स्थापित किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ० शिव प्रसाद डबराल 'चारण' (सं० 2033) उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग-7 वीरगाथा प्रकाश दोगड्डा।
2. मुकुन्दीलाल (1968) गढ़वाल पेंटिंग्स, 22, 23 सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय शरत सरकार।
3. रतूड़ी, हरिकृष्ण (1980), गढ़वाल का इतिहास, भागीरथी प्रकाशन गृह, टिहरी गढ़वाल, पृ० 237
4. गोदियाल, जे०के० एवं डोबरियाल, कुसुम (1998), गढ़वाल: संस्कृति, कला एवं साहित्य, शैलजा प्रकाशन, पौड़ी गढ़वाल, पृ०सं० 128
5. डोबरियाल, ए०के० (1990) गढ़वाल का मत्स्य पर्यावरण, नवराह, नई चेतना, 3, 11-14
6. ऐवट (1880), ए हैण्डबुक ऑन गढ़वाली, पृ० 11-12
7. एटकिन्सन (1884) गजेटियर, खण्ड 12 : पृ० 420
8. ग्रियर्सन (1916) लिग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया, खण्ड-11, पृ० 279
9. भजन सिंह 'सिंह' (1986) : आर्यों का आदि निवास-मध्य हिमालय।
10. शिवानन्द नौटियाल (1990) : उत्तराखण्ड की जन जातियां, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।

